P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-8* ISSUE-11* July- 2021
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

श्रीमद्भगवद्गीता के सन्दर्भ में विश्व–कल्याण की अवधारणा

Concept of Welfare of the World in The Context of Shrimadbhagavadgita

Paper Submission: 05/07/2021, Date of Acceptance: 21/07/2021, Date of Publication: 24/07/2021

प्रेयस सोनी
विद्यार्थी,
इतिहास विभाग,
इदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

सारांश

आज पूरा विश्व कोरोना महामारी के दुष्प्रभाव से घिरा है। इस महामारी के कारण लाखों मनुष्य अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर पाए! मानव–समाज इस समय गम्भीर मनोवैज्ञानिक समस्याएँ झेल रहा है। दुनिया के बड़े–बड़े देश किसी न किसी बहाने एक–दूसरे को मानवता का अपराधी ठहराने में लगे हुए हैं। इस दशा में दुनिया यदि किसी एक राष्ट्र की ओर आशा से भरी दृष्टि से देख रही है, तो वह भारत है। इसका कारण यह है कि भारत के समाज ने दुनिया को विश्व–कुटुम्ब की अवधारणा दी है। श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय मनीषा का प्रतिनिधि ग्रंथ है, जिसमें विश्व के इस कुटुंब के कल्याण के सूत्र निबद्ध हैं। उन सूत्रों का स्मरण करने का यह सही समय है। प्रस्तुत पत्र में श्रीमद्भगवद्गीता में सन्निहित ऐसे ही कतिपय सूत्रों का विवेचन किया गया है।

Today the whole world is surrounded by the ill effects of the corona pandemic. Millions of human beings could not save their lives due to this pandemic! Human society is currently facing serious psychological problems. Big countries of the world are engaged in blaming each other for one reason or the other as criminals of humanity. In this situation, if the world is looking at any one nation with full of hope, it is India. The reason for this is that the society of India has given the concept of Vishwa-Kutumb to the world. Shrimadbhagavadgita is the representative book of Indian wisdom, in which the formulas for the welfare of this family of the world are written. This is the right time to remember those sutras. In the present paper, some such sutras embodied in Shrimadbhagavadgita have been discussed.

मुख्य शब्द : श्रीमद्भगवद्गीता, कोरोना, विश्व–कुटुंब, सत, रज, तम, जीवन–युद्ध, सनातन–चेतना, अन्तःकरण, निष्काम कर्म, बन्धन, मुक्ति।
Shrimadbhagavadgita, Corona, Vishwa-Kutumb, Sat, Raja, Tama, Life-War, Sanatan-Consciousness, Conscience, Nishkaam Karma, Bondage, Liberation.

प्रस्तावना

इस दुनिया में ऐसा कोई इंसान खोज पाना असम्भव है, जो कामना व वासना से रहित हो। धरती पर जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति बन्धन में बँधा हुआ है..! वह इस बन्धन से मुक्त होने की बात करता तो दिखाई देता है, लेकिन मुक्त होना नहीं चाहता और वह मुक्त हो भी नहीं सकता। इसीलिए वह सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहता है। प्रकृति से मनुष्य को जो स्वभाव प्राप्त हुआ है, उसके चलते वह सुख में सुखी और दुःख में दुःखी न हो, यह सम्भव भी नहीं लगता। दूसरे शब्दों में मनुष्य होने का अर्थ ही सुख–दुःख की अनुभूतियों के साथ रहना है। सुख–दुःख की ये अनुभूतियाँ उसकी समस्त चाही–अनचाही, शारीरिक–मानसिक चेष्टाओं के मूल में निहित हैं। इन चेष्टाओं में निरत रहना ही स्थूल व सूक्ष्म अर्थ में कर्म है।

कर्मफल के इस सिद्धान्त के आधार पर हमारे पुरखों ने पुनर्जन्म की यह अद्भुत अवधारणा व्युत्पन्न की है कि जब तक कर्म की निधि, जिसमें अच्छे–बुरे सभी प्रकार के कर्म सम्मिलित हैं, किसी मनुष्य के खाते में जमा रहेगी – तब तक उसे जन्म लेते रहना होगा। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब कर्म से मुक्त ही नहीं हुआ जा सकता यानी कर्म–मुक्ति सम्भव ही नहीं है, तो उसके लिए

प्रयास क्यों किया जाए..? इस प्रश्न का उत्तर हमें श्रीमद्भगवद्गीता से मिलता है!

एक बार के लिए हम पुनर्जन्म की बात न भी करें, तो इस सत्य से मुख नहीं मोड़ा जा सकता कि हम सब अपने इस जन्म में निश्चित रूप से सन्तोषपूर्वक जीना चाहते हैं। सन्तोषपूर्वक जीने के लिए हमें सत्कर्म करने ही होंगे। यदि हम सत्कर्म नहीं करेंगे, तो अशान्ति के प्रेत से बच नहीं सकेंगे। सनातन–संस्कृति का बीज–ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता कारणता–सिद्धान्त के आधार पर हमारे लिए सन्तोषपूर्वक जीने का पथ आलोकित करता है। इस पथ पर कोई मनुष्य अकेला भी चल सकता है और दूसरे मनुष्यों को साथ लेकर भी चल सकता है। कोरोना महामारी हमारे सत्कर्म का नहीं, अपितु दुष्कर्म का प्रतिफल है। भविष्य में दुष्कर्म से किस प्रकार बचा जाए, यह दर्शन हमें श्रीमद्भगवद्गीता से प्राप्त होता

अध्ययन का उद्देश्य

दुनिया में जब–जब संकट आया है, मनुष्य ने उससे निपटने के क्रम में आगे बढ़कर देखने के साथ–साथ पीछे मुड़कर भी देखा है। आज कोविड–19 के रूप में जो महामारी दुनिया के लोगों में भय व अवसाद व्याप्त कर रही है, उसका परिणाम यह हुआ है कि लोग मानवता के भविष्य के प्रति सशंकित हो गए हैं। इस वातावरण में हमारे सामने एक विकल्प यह है कि श्रीमद्भगवद्गीता में उल्लिखित विश्व–कल्याण के सूत्रों का पुनर्पाठ किया जाए। इस शोध–आलेख का मुख्य उद्देश्य उन सूत्रों को आज के परिप्रेक्ष्य में रेखांकित करना है।

परिकल्पना

यह अध्ययन इस परिकल्पना पर आधारित है कि–

1. कोविड–19 के कारण विश्व समग्र रूप से अवसाद की स्थिति में दिखाई देता है, जिसे श्रीमद्भगवद्गीता में निहित निर्देशों के आधार पर दूर किया जा सकता है।
2. कोविड–19 मनुष्य की परिग्रह की अति का परिणाम है और विश्व इसका समाधान भी परिग्रह में ही देख रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता से निसृत अपरिग्रह की अवधारणा मानव को उसकी आवश्यकताएँ सीमित रखने के लिए प्रेरित करने में सक्षम है।

साहित्यावलोकन

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय सनातन चेतना के प्रसिद्ध ग्रंथ 'महाभारत' का भाग है। इस ग्रंथ के भीष्मपर्व के पच्चीसवें अध्याय से लेकर बयालीसवें अध्याय तक सात सौ श्लोकों में निबद्ध उपनिषद्–ज्ञान–राशि को श्रीमद्भगवद्गीता या प्रचलित अर्थ में गीता कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीता, ईश्वर के किसी अवतार के मुख से निसृत ज्ञान का अलौकिक रूप है अथवा यह राज्य के लिए संघर्षरत किसी कुल के किंकर्त्तव्यविमूढ़ योद्धा को एक विलक्षण बुद्धिसम्पन्न सखा द्वारा दिया गया ऊर्जा से भरा सन्देश है – इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता, साहित्य के सामान्य सिद्धान्तों से अलग व व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर संयोजित दर्शन का वह ग्रंथ है, जो न केवल भारतवासियों को – बल्कि इस संसार के समस्त मनुष्यों को नैराश्य के भँवर से बाहर निकालता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के रचना–काल के सम्बन्ध में स्पष्ट है कि इसका काल वही होगा, जो महाभारत का है। महाभारत, अपने नवीन रूप में, ईसा पूर्व प्रथम सहस्राब्दी में सामने आया – जबकि इसका मूल स्वरूप इससे बहुत पहले का है। श्रीमद्भगवद्गीता को, महाभारत के क्रम में ही, चाहे इतिहास के किसी भी काल–खण्ड में रखा जाए दृ इसके सन्देश ने भारतीय लोक–मानस को अत्यन्त सघनता से प्रभावित किया है। दुनिया का ऐसा कोई भाग नहीं है, जहाँ गीता का संदेश नहीं पहुँचा हो। दुनिया की ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें गीता का कर्म–सिद्धांत व्याख्यायित नहीं किया गया हो – इसलिए यह ग्रंथ आज भी अपनी प्रासंगिकता रखता है।

श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा ग्रंथ है, जो भारत देश के तो घर–घर में तो विद्यमान है, दुनिया के दूसरे देशों में भी इसका पूरा प्रचार–प्रसार है। 1923 ई. में स्थापित गीता प्रेस, गोरखपुर ने दुनिया में श्रीमद्भगवद्गीता के प्रचार–प्रसार की आध्यात्मिक क्रांति का नेतृत्त्व किया है। लोकमान्य तिलक का *गीता–रहस्य* इस समय तक समाज में यह धारणा स्थापित कर चुका था कि गीता निवृत्तिप्रधान नहीं, अपितु कर्मप्रधान ग्रंथ है। राष्ट्रीय संग्राम में गाँधीजी की सक्रियता और गीता के प्रति उनका लेखन बहुत लोकप्रिय हुआ। *गीता–माता* इसका प्रमाण है। 1948 ई. में गीता पर डॉ. सर्वेपल्ली राधाकृष्णन् की पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसे भी अच्छी मान्यता मिली।

वर्तमान में, कोरोना महामारी के कारण, जब विश्व किंकर्त्तव्यविमूढ़ दिखाई दे रहा है, श्रीमद्भगवद्गीता पर उत्कृष्ट लेखन सामने आ रहा है। इसी वर्ष, 2021 में, विचारक श्री बृजमोहन की एक पुस्तक *लाइफ : लेसन्स फ्रॉम गीताजी ऑन न्यू सोसाइटी* प्रकाशित हुई है, जिसकी भूमिका में लिखा गया है कि भारतीय समाज में कोविड–19 के दौरान हुए लॉकडाउन व क्वारेंटीन से उपजी परिस्थिति में अच्छे लोगों ने कर्मयोग को अपनाते हुए सेवाकार्य किया। यह अलग बात है कि अवसर का फायदा उठाने वालों की तुलना में अच्छे लोग कम थे। पुस्तक में श्री बृजमोहन ने श्रीकृष्ण को सन्दर्भित करते हुए कहा है कि अच्छे लोगों को हर हाल में अपना काम करते रहना चाहिए। श्री बृजमोहन की श्रीमद्भगवद्गीता पर आधारित इकॉनमी (2020) तथा स्किल परफेक्शन (2021) आदि विषयों पर भी हाल ही में पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आचार्य विनोबा भावे की श्रीमद्भगवद्गीता पर केन्द्रित अँगरेजी पुस्तक *टॉक्स ऑन गीता,* 2019 में, पुनर्प्रकाशित हुई है, जिसमें वे कहते हैं कि दुनिया मेरे किसी काम को याद रखे या न रखे – लेकिन यह निश्चित है कि गीता पर किए हुए मेरे लेखन से मानवता की सेवा होती रहेगी।

साहित्य के माध्यम से अपनी बात कहने वाले मनीषी भी वर्तमान के सूत्र गीता द्वारा अतीत से जोड़ते आए हैं। इसी वर्ष (जनवरी 2021) आई पुस्तक *अथर्वा* –

मैं वही वन हूँ में आनन्द कुमार सिंह कृष्ण को एक युग–शिक्षक रूप को देखते हैं –

मेरे कवच–कुण्डल हर लिए गए हैं

...मैं रथोपस्थ अर्जुन को गीता सुनाता भाग चलता हूँ

नाचते–गाते वृन्दावन–मन्दिर में..!!!

स्वानुशासन का *विज्ञान*

श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से एक सामान्य पाठक भी उपनिषदों का सार समझ जाता है। अपना व जगत् का कल्याण होना चाहिए, यह समझ लेना ज्ञान है और यह कल्याण किस विधि से होना चाहिए, यह जान लेना विज्ञान है। भारतीय दर्शन में विज्ञान पश्चिम का साइंस नहीं है, जो भौतिक प्रयोगों से परे जाता ही नहीं है। भारतीय दर्शन का आधारभूत तत्त्व केवल बुद्धि–विलास करने से भी समझ में नहीं आता है, जिसके अन्तर्गत केवल जीवन व प्रकृति के रहस्यों की विवेचना की जाए। भारतीय दर्शन का स्पष्टीकरण करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता हमारे मन और मस्तिष्क में विज्ञान की इस अवधारणा को अत्यन्त सरलता से स्थापित कर देता है कि व्यक्ति यदि सत्कर्म करते हुए आत्मानुशासन के साथ सभी को साथ लेकर आगे बढ़े, तो केवल मानव–जाति का ही नहीं – बल्कि समस्त जीवों के कल्याण का राजपथ आलोकित होता है! विज्ञान व उसकी संगति में मानव–कल्याण की अवधारणा तो हमारे देश में वैदिक युग से ही चली आ रही है। 'ऋग्वेद' कहता है कि मानव–समुदाय के कल्याण एवं वृद्धि के लिए सभी मनुष्य विद्या, धन व विज्ञान से युक्त हों –

विश्वे हिष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवंवृधे रिशादसः।

(08.27.03)

कोई व्यक्ति विश्व के कल्याण की बात तभी सोच सकता है, जब उसे अपने कल्याण की बात समझ में आ जाए। आत्म–कल्याण की पगडण्डी पर चलकर ही हम विश्व–कल्याण के राजपथ तक पहुँच सकते हैं। आत्म–कल्याण का एक सूत्र है कि अपने कर्मों के फल के प्रति अनासक्त रहा जाए, ताकि हम कर्मों में लिप्त न हो सकें –

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।

(04.14)

निष्काम कर्म

हमें इस विषय में पूर्णतया स्पष्ट होना चाहिए कि कोई यदि मनुष्य है, तो निश्चित रूप से उसे सुख व दुःख की अनुभूति होगी और इस अनुभूति के कारण ही वह अपनी शारीरिक व मानसिक चेष्टाओं में निरत होगा। कहना चाहिए कि सुख व दुःख की अनुभूति मनुष्य को कुछ न कुछ करने या न करने के लिए बाध्य करती है। यह कुछ न कुछ करना या न करना हमें हमारी इच्छाओं के अधीन कर देता है। इस अधीनता से राग व द्वेष उत्पन्न होता है। चूँकि हम सामाजिक जीवन जीते हैं और इसके बिना हमारे होने की कल्पना नहीं की जा सकती, इसलिए हमारी चिन्ता यह होनी चाहिए कि यह सामाजिकता बची कैसे रहे..? समाज में रहने वाले सभी लोग यदि राग व द्वेष के अधीन होकर केवल स्वयं का ही चिन्तन करने लग गए, तो समाज टूट जाएगा – अतः हमें राग व द्वेष के भाव से मुक्त होकर स्वयं को अनुशासन में ढालना होगा अर्थात् अपनी चेष्टाओं अर्थात् कर्म का प्रबन्धन करना होगा। जिस भौतिक–जगत् में हम रह रहे हैं, उसमें स्वप्रबन्धन करना सरल कार्य नहीं है। यह कार्य सरल हो सकता है, यदि हम श्रीमद्भगवद्गीता जैसे कालजयी ग्रंथ की शरण में चले जाएँ, जिसका सन्देश है कि अपने–अपने कर्म के गुणों का पालन करते हुए प्रत्येक व्यक्ति सिद्ध हो सकता है –

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।

(18.45)

निष्काम कर्म की अवधारणा गीता में कितनी उदात्त रूप में प्रकट हुई है, इसे अँगरेज दार्शनिक ए. एल. बाशम इस प्रकार स्पष्ट करते हैं – 'भगवद्गीता के उपदेश का सार एक वाक्य में समाहित है – *कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।*

भारतीय मनीषा वेदों और उन पर आधारित ग्रंथों – जैसे आरण्यकों, उपनिषदों आदि – में अपने सनातन रूप में प्रकट होती है। वेदों, आरण्यकों, उपनिषदों आदि का अध्ययन और मनन करना सांसारिक मायाजाल में उलझे सामान्य व्यक्ति के लिए एक कठिन कार्य हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता से यह कठिनाई बड़ी सीमा तक दूर हो जाती है। श्रीमद्भगवद्गीता का सन्देश है कि जिसके सम्पूर्ण शास्त्र–सम्मत कर्म कामना व संकल्प से रहित होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञान–रूप अग्नि द्वारा भस्म हो गए हैं, उस व्यक्ति को ज्ञानीजन भी पंडित कहते हैं –

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः।। (04.19)

न *राग*, न *द्वेष*

हम देखते हैं कि स्थान–स्थान पर सजे भव्य मण्डपों तले या टेलीविजन अथवा फोन के स्क्रीन पर भाँति–भाँति के वेश धारण किए हुए कथित बाबाओं और संन्यासियों द्वारा अन्तःकरण की प्रसन्नता का जो मार्ग लोगों को बताया जाता है, वह भव्यता का सम्मोहन टूटते ही दृष्टि से ओझल हो जाता है, किंतु श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के में श्रीकृष्ण जो बात कहते हैं – वह हमारे हृदय–पटल पर स्थाई रूप से अंकित हो जाती है। वे कहते हैं कि जो व्यक्ति राग–द्वेष से मुक्त हो जाता है और अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है, वह प्रभु–प्रसाद प्राप्त करता है –

रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। (02.64)

प्रभु–प्रसाद प्राप्त कर लेने का अर्थ यही है कि राग–द्वेष के भाव से मुक्त व्यक्ति न सुख में सुखी होता है और न ही दुःख में दुःखी होता है अर्थात् उसका मन इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए विषयों के प्रभाव से मुक्त होता है। विषयों के प्रभाव से मुक्त होने से व्यक्ति का अन्तःकरण निर्मल हो जाता है।

अन्तःकरण की प्रसन्नता

अन्तःकरण का निर्माल्य ही जीवन में वास्तविक प्रसन्नता को जन्म देता है! यह वास्तविक प्रसन्नता व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से पूरे विश्व की ओर जानी चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में

श्रीकृष्ण ने इस बात को बहुत ही सरल शब्दों में समझाया है कि जब तुम्हारी बुद्धि मोह रूपी घने जंगल को पार कर जाएगी, तो तुम सुनी हुई और न सुनी हुई सभी बातों के प्रति अन्यमनस्क हो जाओगे –

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।
(02.52)

वस्तुतः सभ्यता का विस्तार इस दिशा में हो चुका है कि जीवन का वास्तविक धरातल हमें दिखाई ही नहीं देता। परिग्रह और लोलुपता के अनुपात में हमने सफलता के सुविधाजनक स्थिरांक खड़े कर लिए हैं। कोरोना का विनाशकारी संक्रमण इसी परिग्रह व लोलुपता का दुष्परिणाम है। यदि समष्टिगत रूप से विचार करें, तो यह सोचने का हमारा स्वभाव ही होना चाहिए कि यदि इस संसार में कोई अपना नहीं है – तो कोई पराया भी नहीं है। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि मनुष्य के हृदय में संवेदना का कोई तत्त्व विद्यमान नहीं होना चाहिए। यदि मनुष्य के हृदय में संवेदना का तत्त्व विद्यमान नहीं होता, तो हम मनुष्य ही न होते! फिर हमारे होंठों पर हँसी की तरलता और आँखों में आँसुओं की नमी कभी दिखाई न देती। अब कहा जा सकता है कि राग–द्वेष से मुक्त हो चुके व्यक्ति के क्यों तो होंठों पर हँसी आए और क्यों ही उसकी आँखों में नमी छाए? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस तरह समझना चाहिए कि किसी के होंठों पर हँसी केवल अपने लिए आए, तो वह अच्छी बात नहीं है। इससे तो उसे केवल अपने अन्तःकरण की प्रसन्नता से ही मतलब रह जाएगा। इस संसार में कोई भी व्यक्ति यदि अपने लिए ही प्रसन्न रहेगा, तो उसके लिए संसार में कुछ बचेगा ही नहीं। इसी प्रकार किसी की आँखों में नमी छाए, तो वह केवल अपने लिए नहीं छानी चाहिए! दूसरे का अन्तःकरण यदि आनंद में नहीं है, तो उसका अन्तःकरण भी आनंद में नहीं होना चाहिए..!

राग–द्वेष से मुक्त होने का अर्थ कर्म से मुक्त होना नहीं है। कर्म में तो हमें निरत रहना ही होगा। कर्म जब हमारे होने की अनिवार्य शर्त है, तो क्यों न हम सत्कर्म में निरत रहें..? सत्कर्म में निरत रहने से हमारे अन्तःकरण की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का विषय चयनित लोगों के प्रति नहीं रहेगा। सत्कर्म करने से हमारे अन्तःकरण की प्रसन्नता का संबंध प्रत्येक जीव के प्रति होगा। हमारे अन्तःकरण की प्रसन्नता का विषय सभी से सम्बद्ध हो, इसके लिए आवश्यक है कि हम स्वप्रबन्धित रहें। स्वप्रबन्धन अत्यधिक कठिन कार्य है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं –

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। (02.60)

यहाँ प्रकट किया गया यह भाव कि जिसका अन्तःकरण राग और द्वेषादि से मुक्त है, वही अन्तःकरण ईश्वरीय कृपा को प्राप्त कर सकता है। स्पष्ट है कि जो इन्द्रियों को नियन्त्रण में रख सकता है, वही इस भाव से निरत रह सकता है कि दूसरा व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है अथवा नहीं। दूसरे के कर्त्तव्य पर प्रश्नचिह्न खड़ा करने वाला व स्वयं के कर्त्तव्य से विमुख होने वाला व्यक्ति इस संसार में कल्याण–पथ का काँटा ही बनता है।

तप और जीवन–युद्ध

श्रीमद्भगवद्गीता, जिसमें इन्द्रियों को नियन्त्रित करने के लिए तप की अवधारणा दी गई है – ऋग्वेद की इस घोषणा का ही विस्तार है कि तप द्वारा ही ऋत और सत्य पैदा हुए। ऋग्वेद का ऋषि कहता है कि चारों ओर से प्रकाशमान तप रूपी परमात्मा से ऋत और सत्य से सारी सृष्टि संचालित होती है –

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोध्यजायत।
(10.190.01)

श्रीमद्भगवद्गीता में इस तथ्य की बार–बार पुष्टि की गई है कि सभी का कल्याण सम्भव है, यदि सभी तप करें। तप का उद्देश्य पवित्रतम आदर्श की सिद्धि करना है, जो कड़े संयम के बिना सम्भव नहीं है। क्या पवित्रतम आदर्श की सिद्धि तभी सम्भव है, जब हम वन में बैठकर साधना करें? नहीं, पवित्रतम आदर्श की सिद्धि के लिए कोई स्थान विशेष निर्धारित नहीं है। सद्प्रेरणा की ओर बढ़ने के लिए युद्ध की भूमि भी उतनी ही उपयुक्त हो सकती है, जितनी किसी वन की भूमि। श्रीकृष्ण अर्जुन का आह्वान करते हैं कि तुम्हें सदैव मेरा स्मरण करते हुए युद्ध करने के अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। निस्संदेह अपने कर्मों को मुझे समर्पित करके तथा अपने मन व बुद्धि को मुझमें लगाकर तुम मुझे प्राप्त कर लोगे –

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्य संशयः।। (08.07)

श्रीमद्भगवद्गीता में जब श्रीकृष्ण अर्जुन से युद्ध की बात करते हैं, तो वे केवल रणक्षेत्र में अस्त्र–शस्त्र के प्रयोग व कूटनीति के माध्यम से विरोधी को समर्पण हेतु विवश करने की बात नहीं करते हैं। श्रीकृष्ण का युद्ध से तात्पर्य इस धरती पर रह रहे प्रत्येक इंसान के जीवन–युद्ध से है, जिसे तप करते हुए –अपने मन व बुद्धि को ईश्वर में लगाते हुए – उन सब बाधाओं को पार करना है – जो मानव–कल्याण के सार्वत्रिक उद्देश्य को पूरा नहीं होने देतीं। यह एक दुर्गम पथ है और इस पर चलते हुए व्यक्ति डगमगाता अवश्य है। उसका आत्म–विश्वास भी चुकता हुआ दिखाई देता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन से हमें आत्म–विश्वास की वह चुकी हुई पूँजी पुनः प्राप्त हो जाती है, जिसे पाकर अर्जुन ने सफलता का मुख देखा था।

मैं* और *मेरा

सच पूछा जाए, तो मनुष्य के कल्याण के मार्ग में बाधाएँ भी मनुष्यों ने ही खड़ी कर रखी हैं। किसी दूसरे लोक से तो ऐसे जीवों का अवतरण हुआ नहीं है, जिन्होंने हमारे व्यवहार में मैं अथवा मेरा तत्त्व की स्थापना कर दी हो। मैं अथवा मेरा तत्त्व ही तो हमें व्यष्टि से समष्टि की ओर जाने से रोकने वाले प्रभावी कारक हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं अथवा मेरा तत्त्व की तीव्र शक्ति के पीछे मूल कारण हमारी इच्छाएँ हैं। वे कहते हैं कि जो मनुष्य समुद्र में प्रवेश करते रहने वाली नदियों के समान इच्छाओं के निरन्तर प्रवाह से विचलित नहीं होता और जो हमेशा स्थिर बना रहता है, वही शान्ति को प्राप्त करता है। वह

मनुष्य कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता, जो इच्छाओं को पूरा करने की कोशिश करता है –

आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमानोति न कामकामी ।। (02.70)

श्रीकृष्ण कहना चाहते हैं कि इच्छाओं के पूरा न होने से व्यक्ति के मन में विकार आते हैं। विकारों से पुनः इच्छाओं का जन्म होता है। इच्छाओं की पूर्ति के लिए व्यक्तियों में पारस्परिक संघर्ष होता है, क्योंकि उनका मैं व मेरा तत्त्व उन्हें इसके लिए बाध्य का देता है। इच्छाओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को दूसरों से संघर्ष करने से पहले स्वयं से संघर्ष करना पड़ता है। जो व्यक्ति मैं या मेरा तत्त्व के वशीभूत होकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए स्वयं व दूसरों से संघर्ष में उलझा हुआ है, वह सर्व–कल्याण के विचार से कोसों दूर होता है। श्रीमद्भगवद्गीता का सन्देश हमें इस संघर्ष से दूर करता है।

सर्व–कल्याण के प्रत्यय को अपनी पुस्तक गीता–माता में महात्मा गाँधी इस प्रकार समझाते हैं – अपने सौ वर्ष के जीवनकाल से मनुष्य काल का अनुमान लगाता है और उतने समय में हजारों जाल फैलाता है, पर काल तो अनन्त है । हजारों युगों को ब्रह्मा के एक दिन के बराबर समझ गया हैं। इसमें मनुष्य के एक दिन की या सौ वर्ष की क्या विसात है? इस तनिक से समय को लेकर इतनी व्यर्थ की दौड़–धूप क्यों? जिस अनन्त काल के चक्र में मनुष्य का जीवन क्षणमात्र के समान है, उसमें तो ईश्वर का ध्यान ही शोभा देता है – क्षणिक भोगों के पीछे दौड़ना नहीं! ब्रह्मा के रात–दिन में उत्पत्ति और नाश चलता ही रहता है और चलता रहेगा।

तीन प्रकार की वृत्तियाँ

मनुष्य क्यों राग–द्वेष से मुक्त नहीं हो पाता, क्यों वह मैं अथवा मेरा के तत्त्व से घिरा रहता है, क्यों वह सत्कर्म से दूर भागता है, क्यों उसमें विश्व–कल्याण का भाव नहीं जागता –इन प्रश्नों के उत्तर श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अनेक प्रकार से देते हैं। इन प्रश्नों को सरल विधि से समझाने के लिए वे हमारी तीन प्रकार की वृत्तियों का उल्लेख करते हैं। व्यष्टि से समष्टि की ओर जाने का अभ्यास करने के लिए सत, रज व तम प्रवृत्तियों की अवधारणा को समझना आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि जो बुद्धि धर्म तथा अधर्म, करणीय तथा अकरणीय कर्म में भेद नहीं कर पाती, वह राजसी है। जो बुद्धि मोह तथा अंधकार के वशीभूत होकर अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म मानती है और हमेशा विपरीत दिशा में प्रयत्न करती है, वह तामसी है। जो अटूट है, जिसको योगाभ्यास द्वारा अचल रहकर धारण किया जाता है और जो इस प्रकार मन, प्राण तथा इन्द्रियों की क्रियाओं को नियन्त्रण में रखती है, वह बुद्धि सात्त्विक है –

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजनाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।।
(18.31)

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्वितपरीतांश्च बुद्धि सा पार्थ तामसी।।
(18.32)

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रिय क्रियाः ।
योगेनव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।।
(18.33)

इस प्रकार राजसी, तामसी और सात्त्विक वृत्तियों का वर्णन करके श्रीकृष्ण हमें यह सन्देश देते हैं कि सुधार की समस्त प्रक्रियाएँ मनुष्य के स्वयं के अन्तःकरण से ही सुनिश्चित होती हैं। मनुष्य स्वविवेक से यह निर्णय करे कि वह इस समय कौनसी वृत्ति में जी रहा है और उसे, यदि वह ठीक नहीं है – तो, कौनसी वृत्ति में जीना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता की सार्वभौमिक महत्ता

श्रीमद्भगवद्गीता केवल वे लोग ही नहीं पढ़ते हैं, जो वैदिक धर्म में विश्वास करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता अपने आप में इतने उदार विचार का ग्रंथ है कि इसे किसी भी सम्प्रदाय को मानने वाला व्यक्ति पढ़ और समझ सकता है। इस प्रकार इस ग्रंथ से निसृत कर्म–सिद्धांत के आधार पर पूरे विश्व में यह सन्देश दिया जा सकता है कि यदि सभी मनुष्य अपना–अपना काम करते रहें और दूसरों के काम में बाधा न बनें, तो स्वतः ही जगत् का कल्याण हो जाएगा। गीता की सार्वभौमिक महत्ता को के. दामोदरन इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं– 'ऐसा प्रतीत होता है कि लोग यदि विभिन्न दार्शनिक विचारों को अपनाएँ, तो भी श्रीकृष्ण को कोई आपत्ति नहीं थी। किसी मनुष्य के विचार कुछ भी क्यों न हों, यदि वह पूर्ण आस्था से ईश्वर की भक्ति करता हैं– तो उसे मोक्ष प्राप्त होता है। पूजा–आराधना और प्रार्थना के प्रति भी श्रीमद्भगवद्गीता का दृष्टिकोण संकीर्णतावादी नहीं था। श्रीकृष्ण ने कहा है के वे लोग भी, जो उनकी पूजा न करके अन्य देवी–देवताओं की भक्ति या श्रद्धा से पूजा करते है, वे वास्तव में उनकी ही पूजा करते हैं।'

निष्कर्ष

वर्तमान राष्ट्रीय–अन्तरराष्ट्रीय परिवेश में, विशेष रूप से कोरोना–संक्रमण के चलते, श्रीमद्भगवद्गीता के सन्देश की सर्वाधिक उपयोगिता है। मनुष्य के परिग्रह और लोलुपता के कारण विश्व आज एक ओर परमाणु–खतरे से घिरा है, तो दूसरी ओर महामारी इसे विरूप करने में लगी है। कर्म करना हमारा अधिकार है और उसके परिणाम की चिन्ता में हमें अपने उससे ध्यान नहीं हटाना चाहिए, क्योंकि इससे हमारी एकाग्रता भंग होती है। इसके अतिरिक्त यदि हम सत्कर्म के प्रति समर्पित रहेंगे, तो हमें करणीय कार्य का ही ध्यान रहेगा और अकरणीय कार्य से हम स्वतः ही विलग हो जाएँगे। इस तरह के लोक–कल्याणकारी संदेश देने वाला भारत की सनातन–चेतना का प्रतिनिधि ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता आज पूरे विश्व को दिशा देने में सक्षम अद्भुत ग्रंथ है, जिसका समुचित रूप से प्रचार–प्रसार करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *अथर्वा – मैं वही वन हूँ, आनन्द कुमार सिंह, नयी किताब प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021.*
2. *अद्भुत भारत, ए. एल. बाशम, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1997.*

3. *ऋग्वेदभाष्यम्, महर्षि दयानन्द सरस्वती, मानव उत्थान संकल्प संस्थान (पंजी.), नई दिल्ली, 2010.*
4. *गीता–प्रबन्ध, श्रीअरविन्द, श्रीअरविन्द–ग्रंथमाला, पाँडीचेरी, 1942.*
5. *गीता–माता, महात्मा गाँधी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1960.*
6. *टॉक्स ऑन गीता, विनोबा भावे, हर्टफुलनेस वे सीरीज, कान्हा विलेज, रंगारेड्डी जिला, तेलंगाना, 2019.*
7. *भारतीय चिन्तन–परम्परा, के. दामोदरन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2001.*
8. *लाइफ : लेसन्स फ्रॉम गीताजी ऑन न्यू सोसाइटी, नोशनप्रेस पब्लिकेशन, चेन्नई, 2021.*
9. *श्रीमद्भगवद्गीता, श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई, 2005.*
10. *https://www.holy-bhagavad-gita.org*
11. *https://www.asitis.com*
12. *https://m.bharatdiscovery.org*